



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 8.4
 IJAR 2020; 6(2): 372-375
www.allresearchjournal.com
 Received: 21-12-2019
 Accepted: 14-01-2020

डॉ. दिव्या निधि

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी
 विभाग, ल.ना. मिथिला
 विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
 भारत

नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों में नारी-पात्र

डॉ. दिव्या निधि

सारांश

भारतीय समाज में नारी के विशिष्ट स्थान को नकारा नहीं जा सकता है। यही कारण है कि साहित्य में नारी का स्थान सर्वोपरि रहा है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से ही नारी पूजा के योग्य रही। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" कहकर उपर्युक्त वक्तव्य की पुष्टि की जा सकती है। एक जनवादी लेखक होने के नाते पुरुष के साथ नारी की समानता बाबा नागार्जुन के मनो-मस्तिष्क में थी। मिथिला के समाज के नारी-चरित्रों के वर्णन के द्वारा नागार्जुन भारतीय स्त्रियों के मन के कोने में दमित पड़ी सूक्ष्म विलक्षण संवेदनाओं को कभी मौन और कभी मुखर होकर व्यक्त करते।

मुख्य शब्द : भारतीय समाज, नारी की समानता, नागार्जुन के मनो-मस्तिष्क, सूक्ष्म विलक्षण

प्रस्तावना:

नागार्जुन ने स्त्री-समस्या को अलग से नहीं बल्कि स्त्री-पुरुष दोनों के परिप्रेक्ष्य में देखा है तथा अपने उपन्यासों के द्वारा स्त्री की वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक भूमिका पर प्रकाश डालने का सार्थक प्रयत्न किया है। स्त्री की चेतना को नया आयाम देने वाले उनके उपन्यास स्त्री के प्रति लोगों की परम्परागत रूढ़ धारणाओं को बदलने की माँग करते हैं। उनके उनके उपन्यासों में वर्णित स्थितियाँ एवं स्त्री चरित्र इतना विश्वसनीय हैं कि लगता है हमें उस जीवन के रू-ब-रू खड़ा कर दिया गया हो; चाहे वह उपन्यास 'चाची' बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसर नाथ, वरुण के बेटे, दुःखमोचन कुंभीपाक, उग्रतारा, इमरतिया, हो या पारो।

नागार्जुन अपने उपन्यासों में नारी चेतना के विविध सोपानों को उद्घाटित करते हैं। वे यह मानते हैं कि शिक्षा और आर्थिक स्वावलम्बता ही नारी के व्यक्तित्व को सुदृढ़ बना सकता है अपने उपन्यासों में पति परमेश्वर की सामंती चेतना का उपहास किया है अनमेल विवाह एवं विधवा जीवन के अभिशाप से मुक्ति के लिए वे विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन करते हैं।

'रतिनाथ की चाची' नागार्जुन का पहला हिन्दी उपन्यास है जो 1948 ई० में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में अनमेल विवाह, विधवा समस्या, जातिप्रथा आदि समस्याओं का यथार्थपूर्ण चित्रण है। नारी के वैद्यकीय की समस्याओं को इसमें उठाया गया है। रतिनाथ की चाची उर्फ गौरी इस उपन्यास को इसमें उठाया गया है। रतिनाथ का विवाह उससकी आयु से बड़े दमा के रोगी आलसी बैद्यनाथ से हुआ था। वे पुत्र उमानाथ तथा प्रतिभामा का भार असमय ही गौरी के उपर छोड़कर स्वर्गवासी हुए। इसके बाद गौरी की स्थिति विकट हो गई। विधवा गौरी विधुर देवर जगन्नाथ तथा उसके पुत्र रतिनाथ के साथ अपना जीवन व्यतीत करती है। लेखक ने इस उपन्यास में यह दिखाया है कि हमारे समाज में स्त्री पर इतना दबाव दिया जाता है कि अपनी गरिमापूर्ण अस्मिता को निरन्तर तिल-तिल कर छीली जाती हैं अंततः बलि चढ़ा देती है। माँ बनने की क्षमता स्त्री के लिए एक शक्ति है लेकिन पितृसत्तात्मक समाज इसे कमजोरी मानने के लिए बाध्य करता है। यही कारण है कि आलसी जयनाथ वासना में अंधा होकर एक रात अपनी विधवा भाभी गौरी को कलुषित करता है। गौरी गर्भवती हो जाती है। गौरी जयनाथ से इस समस्या का हल खोजती है। जयनाथ वासना पूर्ति के लिए नारी का उपभोग छिपकर तो कर सकता है लेकिन समाज के समक्ष इस उत्तरदायित्व को संभालने का साहस नहीं जुटा पाता। अंततः गौरी को चरित्रहीन करार देकर गाँववाले उसका सामाजिक बहिष्कार कर देते हैं। अपमानित जिन्दगी लेकर गौरी अपनी माँ के यहाँ चली जाती है। गौरी की माँ ही उसे इस समस्या से उबारती है। गौरी पुनः ससुराल लौट आती है पर घुट-घुटकर जीती और मरती है।

हालांकि इस उपन्यास में नागार्जुन स्त्री को विडम्बनाओं से मुक्त नहीं करा पाते लेकिन भारतीय मैथिली समाज में या कमोवेश ग्रामीण भारतीय परिवेश में स्त्री की दुर्दशापूर्ण स्थिति का चित्रण इस प्रकार कर जाते हैं कि हम सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

Corresponding Author:

डॉ. दिव्या निधि

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी
 विभाग, ल.ना. मिथिला
 विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,
 भारत

इस उपन्यास के अधिकांश पुरुष पात्र प्रायः भोजन प्रेमी कुटिल, स्वार्थी और ढोंगी हैं। व्यभिचारी होने के बावजूद उनके मन के किसी बात का अपराध बोध नहीं है। दमयन्ती फूफी और विधवा सुशीला को छोड़ दें तो अधिकतर नारी चरित्र पुरुषों की सुख सुविधा का ख्याल रखने वाली और आज्ञाकारिणी हैं।

नागार्जुन ने स्वतंत्र भारत के गाँवों में उभरने वाली नयी जन-चेतना को अपने उपन्यास-साहित्य में अभिव्यक्ति दी है। 1952 में नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसमें 'बलचनमा' नामक एक ऐसे पात्र की जीवनगाथा है जिसे अपने पिता के हत्यारे के यहाँ नौकरी ही नहीं करनी पड़ती, उसके जुल्मों और अत्याचारों को भी सहना पड़ता है। यह उपन्यास पीड़ित श्रमिक वर्ग के शोषण की कहानी को लेकर आगे बढ़ता है। इस उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि शूद्र एवं निम्न वर्ग की स्त्री दोनों की ही जिन्दगी का सवर्णा की नजर में कोई मोल नहीं है। लेकिन इस दृष्टिकोण के प्रति उनमें विद्रोह की ज्वाला है। बलचनमा की बहन 'रेबनी' पर मंझले मालिक की कुदृष्टि और अपनी पिटाई के बाद उसकी माँ कहती है— "बबुआ बालचन! मर जाना लाख गुना अच्छा है, मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।" माँ के विचार सुनकर ही बलचनमा निश्चय करता है कि चाहे उजड़ जाना पड़े, चाहे जहल-दामुल हो, चाहे फाँसी चढ़ूँ मगर कभी जालिम के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा। बलचनमा की माँ भले ही वैद्यव्य की अनेक विसंगतियों का शिकार बनती है, लेकिन वही बलचनमा में विद्रोह का बीज-बपन करती है।

नागार्जुन ने सामाजिक विषमता के विरुद्ध अपने उपन्यासों एवं स्त्रियों को स्वाभिमान के साथ खड़ किया है। वे यह मानते हैं कि जो वर्ग और व्यक्ति दूसरों के श्रम पर ऐश करते हैं वे समाज के लिए बोझ के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। अतः वे कहते हैं— "खानदान और रामा की कमी नहीं, काज करेंगे नहीं किसी की लड़की सयानी हुई नहीं कि निशाना साधने लग जाते हैं। यह नहीं कि बहन-बेटी सबकी बराबर होती है अपनी इज्जत आबरू संभालेंगे तो दूसरे का भी भला होगा। मगर भैया जिनके पास दौलत होती है वह निपट अंधे होते हैं, अपना-पराया कुछ नहीं सूझता।" नारी के रूप और सौन्दर्य की चर्चा से परहेज करते हुए वे उसकी स्वतंत्रता में बाध कमूल समस्याओं से हमारा साक्षात्कार कराते हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में मानवतावादी स्वर मुखरित है। 1957ई0 में उनका 'दुःखमोचन' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में वे वर्ग वैषम्य, सामाजिक असमानता, आर्थिक समस्या, रूढ़िवादी परम्परा, धार्मिक अंधविश्वासों का साधन समाजवादी चेतना के साथ प्रस्तुत करते हैं। इस उपन्यास में लेखक यह मानते हैं कि नारी को दयनीय जीवन से बचाना है तो विधवा-विवाह आवश्यक हैं। इस उपन्यास का पात्र दुःखमोचन अपने विरोधियों की तनिक भी चिन्ता किये बिना धैर्य एवं विधुर कपिल को विवाह सम्पन्न कराता है। विधवा माया एवं विधुर कपिल का विवाह दुःखमोचन के माध्यम से सम्पन्न कराना नागार्जुन के प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचायक है।

नागार्जुन ने हमेशा शोषण एवं अन्याय का विरोध किया है वह किसी भी स्तर का हो। 1953ई0 में 'नई पौध' उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसमें नागार्जुन ने बेमेल विवाह की समस्या को उठाया है। 'नई पौध' की कथा में प्राचीन और नवीन मूल्यों का संघर्ष है। मिथिला के सौराठ मेले में बहुत से वर एकत्रित होते हैं, जहाँ जाकर लोग अपनी लड़कियों के लिए अपने-अपने आर्थिक स्तर के अनुरूप वर खोजते हैं। इस उपन्यास में खोखा पण्डित नामक एक पात्र है जो अपनी पितृहीन पोती बिसेसरी के लिए इस मेले में वर ठीक करने जाता है। वह अपनी चौदह वर्षीया पोती का विवाह साठ वर्ष के बूढ़े से ठीक करता है। वह जिसके बदले में उसे नौ सौ रुपये मिलना तय होता है लेकिन इस बात की जानकारी जब गाँव के विचारशील युवकों के संगठन (जिसे कि

लेखक ने 'नई पौध' की संज्ञा दी है) का होती है तब वे इसका विरोध करते हैं और साठ वर्षीय वर को गाँव से भगा देते हैं। इसके बाद चौदह वर्षीय बिसेसरी का ब्याह वाचस्पति नामक एक प्रगतिशील युवक से होता है।

नागार्जुन के पात्र परम्परागत मूल्य मर्यादाओं के जर्जन बंधनों की अपने क्रान्तिकारी विचारों के द्वारा तोड़ते हुए नई मान्यताओं के द्वारा तोड़ते हुए मान्यताओं को स्थापित करते हैं। 1957 ई0 में प्रकाशित उपन्यास 'वरुण के बेटे' में मधुरी के विद्रोह के जरिये स्त्री की जिस चेतना को नागार्जुन ने उभारा है, उस तरह से यह कृतित आज भी महत्वपूर्ण हैं। भारतीय समाज में आज भी नारी की स्थिति बड़ी लचर है। लड़की की शादी उसके माँ बाप जिसके साथ कर दें, वह चाहें जैसा हो, जीवन उसी के साथ खेपना लड़की की मजबूरी होती है। ससुराल वालों के अत्याचार सहकर भी जो नारी रह लेती है उसे ही आदर्श माना जाता है, किन्तु मधुरी इन सारे नियमों को तोड़कर अपने श्वसुर के अत्याचार से ऊब कर अपने मायके वापस लौट आती है और निश्चय करती है— वह कभी उस नशाखोर बुढ़े की लात-बात बर्दाश्त करने नहीं जाएगी। फिर से शादी कर लेगी, किसी दिलेर नेक चलन और मेहनतकश नौजवान से। बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुजार सकती।

नागार्जुन के उपन्यासों के पात्र अच्चे बुरे जो भी हों, वे अपनी एक निजता रखते हैं। वे करुणा, ममत्व एवं प्रेम से परिपूर्ण हैं। बल्कि कहें तो उपर्युक्त भावनाओं से पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक लबरेज हैं, लेकिन वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती हैं वे स्त्री स्वाधीनता का नारा नहीं लगाती हैं पर समाज की बुराईयों को समाप्त करना चाहती हैं। वरुण के बेटे में मधुरी भले ही मंगल को अपना प्रेम भुला देने की बात करती है और कहती है— "देखो मंगल अब हम छोकरा-छोकरा नहीं रहे। धूल मिट्टी के बचकाने खेल काफी खेल चुके। सयाने समझकर माँ बाप और सास ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है उससे जी चुराना कायरता होगी। तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है, मुझे अपने घरवाले के प्रति। गाँव-गाँव के हम सीधे सादे लोग ठहरे। हमारा प्रेमनगर कहीं समाज से अलग या संसार के बाहर आबाद हुआ है? मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिंदुरी माँग कालिख पातती रहूँ लेकिन उपर्युक्त बातें कहनेवाली मधुरी के समक्ष जब समाज सुधार की बात आती है तो वह मंगल का साथ देती है। इस संदर्भ में प्रकाश मनु लिखते हैं नागार्जुन की स्त्रियाँ ममतामयी हैं, स्नेहमयी हैं, लेकिन वे मजबूत स्त्रियाँ हैं। प्रेम को लेकर हाय-हाय करना उन्हें नहीं भाता बल्कि प्रेम को लेकर एक तरह की दृढ़ता उनमें जरूर है। इसीलिए प्रेम और जीवन में वे कोई फर्क नहीं करती।"³

1960 ई0 में नागार्जुन कुंभीपाक उपन्यास प्रकाशित हुआ। कुंभीपाक समाज में भ्रष्टाचार, अनाचार, वर्ग वैषम्य को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमें विभाकर, इन्दिरा, भुवन, चम्पा आदि की कहानी यथार्थवाद शैली में प्रस्तुत की गई है। माने हुए नरकों में से एक कुंभीपाक भी है। जहाँ मरने के बाद मनुष्य जाता है। किन्तु विधवा एवं निराश्रित महिलाओं को जीवित भ्रष्ट लोगों ने किस प्रकार कुंभीपाक में डाल रखा है उसे इस उपन्यास में दिखाया गया है। एक ही मकान में रहनेवाले छह किरायेदार परिवारों की जीवन चर्चा पर केन्द्रित यह उपन्यास का मूलाधार नारी पुरुषों के बीच अनैतिक संबंध है। यही नारी खरीदी जाती है, उसका व्यवसाय होता है और कहीं वह परिस्थितिवश विवश होकर स्वयं उपभोग की सामग्री बन जाती है। इस उपन्यास की पात्र है इन्दिरा, जिसका विवाह पन्द्रह वर्ष की उम्र में होता है लेकिन हवाई दुर्घटना में पायलट पति की मृत्यु हो जाती है। फिर इन्दिरा की स्थिति वैसी ही दुःखद होती है जैसी हमारे समाज में अभागिन विधवाओं की होती है।

देह-व्यापार के कुचक्रियों के बीच फाँसी इन्दिरा को निर्मला छुड़ाती है और भाई भाभी के बीच भेज देती है। इन संदर्भों के

द्वारा लेखक ने दिखाया है कि लड़कियों का मानस अपनी सामाजिक भूमिकाओं के निर्वाह साहसी चेतना पाकर भी देह सीमा से विरक्त रहता है क्योंकि पुरुष की उपभोगवादी दृष्टि हमेशा उसे घूरती रहती है। यही वजह है कि शालिनता का प्रदर्शन करनेवाले समाज के भ्रष्ट लोग स्त्री को जीते जी कुंभीपाक में डाल देते हैं। ऐसे ही लोगों के प्रति घृणा व्यक्त करती हुई कहती है क्यों औरतें बिकती हैं? क्यों उन पर डाक बोली जाती है? क्यों उन्हें बाड़े के अन्दर कैद रखा जाता है? मामूली भूल-चूक पर औरतें को क्यों घर से निकाला देते हैं। मुझे और तुम्हें किसने बर्बाद किया? कुंती का यह प्रश्न पाठकों से जबाब-तलब करता है पुरुष की उपभोगवादी दृष्टि पर प्रश्न उठाते हुए नागार्जुन तालाब की मछलियाँ शीर्षक अपनी कविता में चित्रित करते हैं कि जिस प्रकार लोग मछलियों को जिहवा सुख एवं आनन्द के लिए तालाब के बीच घेर कर रखते हैं। ठीक उसी तरह नारी को उपभोग की वस्तु मानकर उसे घर क चहारदीवारियों में कैद रखा जाता है। तली हुई मछलियाँ किसी अंधेड़ पुरुष की कम उम्र मधुर तृतीया भार्या से वार्तालाप करती हैं—

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग, की वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को
अनुपम बतलाते हैं
हमें इन्होंने कैद कर लिया तालाबों में
इसीलिए तो
तुम्हें इन्होंने कैद कर लिया
सात-सात डेवदियों वाली हवेलियों में
सुविधा और सामर्थ्य मुताबिक
अपनी-अपनी रूचि के ही अनुसार सभी
रसना रेति के लेलिहान उस अग्निकुण्ड में
भून-भून कर हमें खा गये.....
और अभी तक खाये जाते।

चम्पा के माध्यम से नारियों को कुंभीपाक रूपी दल-दल से निकाल नये जीवन की ओर प्रयत्नशील दिखाना ही "कुंभीपाक" उपन्यास के लेखक का मन्तव्य रहा है। इसीचंपा कुंभपाक रूपी नरक को छोड़ देती है और हिन्दी टाइपिंग का काम करती है। वह एक ऐसी दुनिया की कामना करती है जहाँ के नर-नारी मिल-जुलकर आगे बढ़ते हैं, जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चकमा नहीं देता, जहाँ पुरुष बल होगा तो स्त्री बुद्धि होगी और स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान।

इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का यथातथ्य चित्रण करते हुए नागार्जुन नारी की सामाजिक स्थिति पर चिंतन के लिए हमें बाध्य करते हैं। स्त्री की दयनीय दशा के पीछे पुरुषवादी मानसिकता जिम्मेवार है इस बात को मानते हुए नागार्जुन ने प्रगतिशील नारी चरित्रों की योजना के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है— "कॉलेजों से पढ़-लिखकर लड़कियाँ निकलती हैं, पुराने समाज के जंगल में खो जाती हैं। शिक्षा, चिकित्सा आदि कई विभाग हैं जिनमें स्त्रियाँ अपनी योग्यता के प्रमाण पेश कर चुकी हैं। शासन और निर्माण के कुछ ही क्षेत्र होंगे, जिनमें स्त्रियाँ काम नहीं कर सकती। दरअसल हम ही उन्हें रोके हुए हैं।" 4 नागार्जुन इस उपन्यास में यह स्पष्ट चित्रित करते हैं कि हमारे भारतीय समाज में स्त्री के लिए पदार्थवादी नजरिये की कहीं कोई कमी नहीं है। आर्थिक अभावों की चक्की में उसकी निर्दोष इच्छाएँ पिसती हैं और वह भोगवाद की भट्टी में झोंक दी जाती है।

नागार्जुन के उपन्यासों की स्त्रियाँ केवल आँसू नहीं बहाती बल्कि जीवन के प्रति, प्रेम के प्रति वे सन्नद्ध हैं। वे आधा-अधूरा जीवन जीते हुए भी अपने प्रेम को पाने के लिए लालायित रहती हैं और

जब ऐसा अवसर आता है तो वे कठोर निर्णय लेने से नहीं चूकती। उग्रतारा (1963ई0) उपन्यास में उसने यह जानते हुए भी कि उसके गर्भ में भीखन सिंह का अंश पल रहा है अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है, यह बात कम हिम्मत ही नहीं। उग्रतारा, कामेश्वर और उसकी भाभी नयी चेतना के प्रतीक हैं। इन तीनों के चरित्र के माध्यम से लेखक ने सामाजिक क्रान्ति की प्रेरणा दी है। कामेश्वर की भाभी नये युग की नारी है। उसके सहयोग से ही उगनी और कामेश्वर विवाह सूत्र में बँध पाते हैं। उगनी को अपनाने का मनोबल कामेश्वर को अपनी भाभी से ही मिलता है। यही नहीं, जब नर्मदेश्वर अपने समाज के व्यभिचारी पुरुषों का अन्त पिस्तौल की सहायता से करना चाहता है तब भाभी कहती है—छिछोर मन का इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं होगी। स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएंगे तभी व्यभिचार घटेगा। देहात में खाते-पीते परिवारों के अंधेड़ भारी मुसीबत पैदा करते हैं। उगनी जैसी लड़कियों के लिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है। दूसरा संकट है उरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति। उग्रतारा के उगनी एवं कामेश्वर जैसे चरित्र इस बात का प्रमाण है कि व्यक्ति में साहस और आत्म विश्वास की भावना हो तो सदियों की रूढ़ियाँ प्रगतिशीलता में बाधक नहीं बनती। इस संदर्भ में मुद्रा राक्षस लिखते हैं— "यह उपन्यास प्रेमचन्द्र के बाद स्त्री विमर्श का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। स्त्री को अपनी नियति के चुनाव का जो अधिकार होना चाहिए नागार्जुन इस उपन्यास में उसी का दस्तावेज पेश करते हैं।" 5 यह ध्यातव्य है कि नागार्जुन की स्त्री पात्र वर्जनाओं को तोड़ते हुए स्त्री पुरुष समानता की पक्षधर हैं, वे अपनी खामियों के साथ, अपने अतीत को स्वीकारते हुए भी नये जीवन, नयी चेतना में स्वयं को ढालती हैं और यह स्वीकार करती हैं कि स्त्री-पुरुष दोनों के सहयोग से ही समाज से असमानता या विषमताओं को दूर किया जा सकता है।

1968ई0 नागार्जुन का 'इमरतिया' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में साधु-संतों, ठगों और अपराधियों के दुश्चक्र में फँसी एक भावुक स्त्री इमरतिया की कहानी वर्णित है। जमनिया गाँव के मठाधीश बाब की चेलिन इमरतिया एक तरह से 'मैला आँचल' की लक्ष्मी कोठारिन का ही नया रूप है। नागार्जुन ने इस उपन्यास में ऐसे भ्रष्ट मठाधीशों का बेबाक चित्रण किया है जो बिना 'चेलिन' के नहीं रह पाते। बाबा स्वयं कहता है— 'इमरतिया जाएगी तो जलेबिया नहीं आयेगी? एक आध सधुआइन न रहे तो मठ उदास लगता है' एक प्रकार से यह उपन्यास मठों की दुराचारपूर्ण जिंदगी का दस्तावेज है जहाँ इमरतिया जैसी भोली-भाली स्त्री को धर्म के नाम पर फँसाकर मठ के साधु-संत शोषण करते हैं।

'पारो' नागार्जुन का पहला मैथिली उपन्यास है जो 1975 ई0 में हिन्दी में अनूदित होकर सामने आया। इस उपन्यास में मिथिला के परिवेश को आधार बनाकर नारी की दयनीय स्थिति को चित्रित किया गया है। आर्थिक अभावों के चलते भारतीय नारी किस प्रकार दुर्दशा सहती है इसका भावपूर्ण चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। गरीबी के कारण 15 वर्षीया पारो पैतालिस वर्षीय पुरुष के साथ ब्याह दी जाती है और घुट-घुटकर जीती है। जीवन भर पारो उस बुढ़े को अपने मन से कभी भी पति स्वीकार नहीं कर पाती। लेखक ने दिखाया है कि जिस समाज में लड़की का होना बोझा माना जाता है वहाँ वह नारकीय जिंदगी ही जी सकती है। उन्होंने दिखाया है कि हमारे समाज में लड़की के जन्म लेते ही कन्यादान की चिंता माँ-बाप, भाई को सताने लगती है। यही वजह है कि वे लड़की पर खीझते रहते हैं।

पारो एक तरह से एक प्रेम कथा भी है जिसमें एक तरफ सामाजिक विवशताओं में बँधा बिरजू है तो दूसरी तरफ सामाजिक कुरीतियों से जूझती एवं रूढ़ियों में बंधी विवश-मजबूर पारो है। इसके बावजूद दोनों के मन में निश्चल प्रेम है। दोनों एक-दूसरे के प्रेम को जीते हैं। पारो नागार्जुन का एक सुगठित उपन्यास है

जिसमें उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों की मनमानियों का चित्रण विभिन्न परिस्थितियों के द्वारा दिखया है और स्त्री यातना के मुद्दे को उठाया है।

नागार्जुन के उपन्यास हमारे सामाजिक जीवन के दस्तावेज हैं। विजय बहादुर सिंह लिखते हैं— “इन उपन्यासों में सबसे महत्वपूर्ण बात ग्रामीण चरित्रों के उस शक्ति की पहचान है जो ‘होरी’ से कहीं अधिक धनिया में थी। चम्पा, भुवन, मधुरी, उग्रतारा में कठोर संकल्प और आत्मनिष्ठा मिलती है वह धनिया (गोदान) का ही विकसित रूप है। नागार्जुन के नारी पात्र ज्यादा दुस्साहसिक और बोल्ड है। स्त्री स्वाधीनता के नाम पर वे भीख मांगते नहीं दिखते। बल्कि ‘मधुरी’ के रूप में वे अन्याय, सहिष्णु और पुरुष को ललकार कर आगे खींचते हैं। नारी चरित्रों की नेतृत्व प्रखरता नागार्जुन की अपने देन है।”⁶

निष्कर्ष :

नागार्जुन की स्त्री पात्र मुक्ति और परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा रखती है तथा उसके लिए वे यथासंभव चेष्टारत रहती है। अपने उपन्यासों में रतिनाथ की चाची, उगनी, पारो, इमरतिया, मधुरी आदि चित्रण कर कथाकार का उद्देश्य मात्र कथा प्रसंग को आगे बढ़ाना, प्रेमगाथा लिखना या उन जैसे चरित्रों का इतिहास लिखना नहीं था। बल्कि उनके जरिए स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक भूमिका, दशा एवं दिशा में सार्थक, सकारात्मक परिवर्तन के लिए ही कथाकार ने उन चरित्रों का सहारा लिया है। शायद इसलिए नागार्जुन ने समाज की स्थितियों का वर्णन कर कथा को लम्बी खींचा है, कहीं-कहीं कथा प्रवाह अवरुद्ध भी होता है लेकिन उन्होंने समाज के कुछ दृश्यों को पकड़कर स्त्री-विमर्श के कई ज्वलंत मुद्दों के तार छेड़ दिये हैं।

संदर्भ सूची-

1. नागार्जुन रचनावली- 4 शोभाकान्त (सं०), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण-2003, पृ०-29
2. नागार्जुन रचनावली- 4 शोभाकान्त (सं०), पृ०-174
3. वरुण के बेटे-नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2003, पृ०-111
4. नागार्जुन रचनावली-5 शोभाकान्त (सं०), पृ०-178
5. राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ-11.11.1998, मुद्रा राक्षस, पृ०-7
6. नागार्जुन का रचना संसार-विजय बहादुर सिंह, संभावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण-1982, पृ०-123